मरूभूमि की ऐतिहासिक धरोहरः सोनार दुर्ग

*डॉ. प्रेरणा माहेश्वरी

शोध सारांश

राजस्थान की मरूभूमि केवल शौर्य,बलिदान और देशानुराग की ही धरती नहीं है बल्कि कला, साहित्य, संस्कृति और प्राकृतिक सौंदर्य का भी जीवन्त क्षेत्र है। यह जीवन्तता जैसलमेर के सोनार दुर्ग में स्पष्ट प्रदर्शित होती है। सोनार दुर्ग राजस्थान के प्रमुख पयर्टन स्थलों में से एक है। दुर्ग में स्थित सैकड़ों आवासीय भावन पीले पत्थरों से बने हुए है और सूर्य की रोशनी में स्वर्णिम आभा बिखेरते हैं इसलिए इसे सोनार दुर्ग कहा गया। यह दुर्ग विश्व का एकमात्र पूर्ण आवासीय दुर्ग है जिसमें वर्तमान में लगभग पांच हजार व्यक्ति निवास कर रहे हैं। वर्ष 2013 में इस दुर्ग को यूनेस्को वर्ल्ड हैरिटेज साइट में शामिल किया गया। यह राजस्थान का एकमात्र ऐसा दुर्ग है जहां हिन्दू वीरों ने ढाई साके किए। दुर्ग में अनेक हवेलियां, मंदिर, महल एवं अन्य विभिन्न उपयोग में आने वाले भवन बने हुए हैं। दुर्ग में जिन भद्र सूरि ज्ञान भंडार में दुर्लभ एवं प्राचीन पांडुलिपियों का अमूल्य संग्रह है। यह विश्व का सबसे बड़ा भूमिगत संग्रहालय है। आक्रान्ताओं के साथ लंबे समय तक संघर्ष करते हुए भी इस दुर्ग ने राजस्थान की संस्कृति और सामाजिक परंपराओं को जीवित रखा है। प्रस्तुत शोध आलेख में सोनार दुर्ग के ऐतिहासिक एवं कलात्मक पक्ष को प्रस्तुत किया गया है।

संकेताक्षर – बुर्ज, परकोटा, तोरणद्वार, सभामंडप, साका

राजस्थान दुर्गों की भूमि है तथा उसका प्रत्येक अंचल दुर्गों से भरा हुआ है। यदि हम इस राज्य के एक भाग से दूसरे भाग में पद यात्रा करें तो हमें लगभग 10 मील के बाद कोई न कोई किला अवश्य मिल जाएगा।[1] राजस्थान में दुर्ग स्थापत्य के विकास का प्रथम सूत्र कालीबंगा की खुदाई में मिलता है। कालीबंगा सभ्यता ईसा से 4700 वर्ष पूर्व की है। यहाँ टीले के रूप में दो गढ़ मिले हैं जो हड़प्पा से मिले इस प्रकार के अवशेषों से साम्यता रखते हैं। पूर्वाभिमुख बड़ा टीला 36 फीट और पश्चिमाभिमुख टीला 26 फीट ऊँचाई का है। यह दुर्ग निर्माण के प्रारंभिक प्रारूप थे। कालान्तर में दुर्गों की स्थापत्य कला में निरन्तर विकास होता गया।

कौटिल्य ने दुर्गों के चार प्रकारों का वर्णन किया है[2]–

1. जलीय दुर्ग – जल से घिरे स्वाभाविक द्वीप अथवा गहरी खुदी हुई खाई से परिवेष्टित दुर्ग को औदक (जलीय) दुर्ग कहते हैं।
2. पर्वत दुर्ग – बड़े–बड़े पत्थरों से बना एवं कंदराओं से घिरा दुर्ग पर्वत दुर्ग कहलाता है ।
3. धान्वन दुर्ग – जल तथा घास आदि से हीन और उत्तर प्रदेश में बना दुर्ग धान्वन दुर्ग माना जाता है।
4. वन दुर्ग – चारों और दलदल से घिरा तथा कांटेदार झाड़ियों से परिवेष्टित दुर्ग वन दुर्ग कहा जाता है।

जैसलमेर के सोनार दुर्ग को 'धान्वन दुर्ग' की श्रेणी में रखा जाता है। इस दुर्ग में स्थित सैंकड़ों आवासीय भवन पीले

पत्थरों के बने हुए हैं और सूर्य की रोशनी में स्वर्णिम आभा बिखेरते हैं, इसलिए इसे सोनार दुर्ग कहा जाता है। राजस्थानी लोक काव्य में इसे 'जैसाणगढ़' भी कहा गया है।

इस दुर्ग के बारे में यह दोहा प्रसिद्ध है–

'गढ़ दिल्ली, गढ़ आगरो, अधगढ़ बीकानेर।
भलों चुणायो भाटियों, सिरे तो जैसलमेर।।

निर्माण –राव जैसल ने वि.सं. 1212 में श्रावण शुक्ला सप्तमी को जैसलमेर के इस दुर्ग की नींव रखी। राव जैसल की मृत्यु के बाद उसके पुत्र व उत्तराधिकारी शालिवाहन द्वितीय ने दुर्ग का अधिकांश निर्माण कार्य करवाया।[3] यह दुर्ग त्रिकूटा कृति का है जिसमें 99 बुर्जे हैं। इन 99 बुर्जों के निर्माण कार्य को राव जैसल के समय आरंभ किया गया जिसे इसके उत्तराधिकारियों द्वारा जारी रखते हुए शालीवाहन (1190–1200 ई.), जैतसिंह (1506–1527 ई.) भीम (1577–1613 ई.), मनोहरदास (1627–1650 ई.) के समय पूरा किया गया।[4] युद्धकाल में बुर्जों का उपयोग तोपें रखकर चलाने के लिए किया जाता था। तोपों के निकट बड़े–बड़े गोलकार एवं बेलनाकार पत्थर रखे जाते थे। शत्रु के परकोटे पर चढ़ने की स्थिति में ये पत्थर उनके ऊपर लुढ़का दिए जाते थे। युद्ध उपरांत इन्हें पुनः अपने स्थान पर लाकर रख दिया जाता था।[5] बुर्जों में भूमिगत कक्ष बने हुए हैं जिनमें बारूद तथा अन्य युद्ध सामग्री रखर रहती थी। इस कक्षों के बाहर की ओर झूलते हुए छज्जे बने हैं जिनका उपयोग युद्धकाल में शत्रु की गतिविधियों को छिपकर देखने तथा निगरानी रखने के लिए होता था।

क्षेत्रफल की दृष्टि से यह दुर्ग 1500 x 750 वर्गफीट के घेरे में हैं तथा इसकी ऊँचाई 250 फीट है।[6] दुर्ग की तीन दीवारों में से एक दीवार पहाड़ी को आवृत्त करती है तथा दूसरी एवं तीसरी दीवार दुर्ग की रक्षा करती है। दुर्ग के निर्माण में पीले पत्थरों के विशाल खण्डों का प्रयोग किया गया है। इन्हें जोड़ने में कहीं भी चूना या गारे का इस्तेमाल नहीं किया गया। मात्र पत्थर पर पत्थर जमाकर फंसाकर या खांचा देकर रखा हुआ है।

पोल/द्वार : दुर्ग में चार विशाल द्वार बने हुए हैं–

1. अखैपौल – यह दुर्ग का मुख्य द्वार है। यह दुर्ग के पूर्व में स्थित मुख्य द्वार के बाहर बहुत बड़ा दालान छोड़कर बनाया गया है। इसके कारण दुर्ग के मुख्य द्वार पर यकायक हमला नहीं किया जा सकता था। इसी द्वार से प्रतिवर्ष माघ पूर्णिमा के अवसर पर दीपक जलाकर मरु महोत्सव का आरंभ किया जाता है।
2. सूरजपोल – इसे एक तोरणद्वार के रूप में बनाया गया है। केन्द्र में सूर्य की प्रतिमा बनाई गई है। सूरजपोल के पास दाहिनी और भव्य मीनार बनी हुई है। इसके शीर्ष पर अष्टकोणीय ढोलाकार छतरी बनी हुई है। इसे बैरीसाल की बुर्ज कहा जाता है।
3. गणेशपोल – इसे भूता पोल भी कहते हैं। कहा जाता है कि महारावल लूणकरण के समय अमीर अली पठान ने षड़यंत्र करके दुर्ग पर अधिकार करने की असफल प्रयास किया था। इस प्रोल के पास सलखा राजपूत अमीर अली पठान के साथ जूझकर अमर हुए थे। तब से रात्रि को दुर्गवासी इस प्रोल से गुजरते भय खाते थे। लोगों ने उस समय से इसका नाम भूता प्रोल रख दिया है।
4. हवा पोल – भूता पोल से बाहर निकलते ही हवा पोल नजर आता है। इसे रंगपोल भी कहा जाता है। इस पोल में प्रवेश करते ही शीतल पवन से थकावट दूर हो जाती है। दुर्गवासी वृद्धजन यहां गर्मी के दिनों में विश्राम करते हैं।

दुर्ग में विभिन्न शासकों द्वारा निर्मित कई महल, मंदिर व अन्य विभिन्न उपयोग में आने वाले भवन बने हुए हैं।

महलों में सर्वोत्तम विलास गजविलास, मोतीमहल, रनिवास, कंवरपदा आदि प्रमुख है–

दुर्ग महल संग्रहालय :

वर्तमान महारावल श्री बृजराज सिंह के पिता महारावल श्री रघुनाथ सिंह ने 13 अगस्त, 1958 को श्री गिरधर स्मारक धर्मार्थ ट्रस्ट, दुर्ग जैसलमेर के नाम से पंजीकृत करवाकर दुर्ग स्थित तमाम सम्पति समर्पित कर दी थी। 01.07.2002 से संग्रहालय का शुभारम्भ किया गया। संग्रहालय में मुख्यतः 14 कक्ष, आठ महाराजा महल में तथा छः रानी महल तैयार किए गए। शस्त्रागार कक्ष में जैसलमेर रियासतकालीन ऐतिहासिक शस्त्रों को प्रदर्शित किया गया है।

दीवानखाना कक्ष में प्राचीन जैसलमेर, रियासत का परंपरागत राजसिंहासन जिसे राजा के राजतिलक के समय उपयोग में लिया जाता है, मेघाडम्बर छत्र[7] एवं अन्य राजसी वैभव की महत्ता रखने वाले कई महत्वपूर्ण उपकरणों को रखा गया है। त्रिपोलिया कक्ष में भगवान श्रीकृष्ण से वर्तमान तक की वंशावली, वंश वृक्ष एवं राजवंश की तस्वीरें लगाई हुई है।

गजविलासः इसका निर्माण महारावल गजसिंह ने 1884 ई. में करवाया था। इसमें चांदी की पालकी और उस काल में उपयोग की वस्तुएँ रखी गई है। इसके सुरंगदार स्तंभ, दांतेदार मेहराब, झूलनी, प्रासादिका, झरोखें, आरपार जाली का काम गुम्बदाकार एवं नोकदार 'दीवारें' सभी दर्शनीय है। इसके प्रमुख झरोखे के नीचे प्रस्तर के उत्कीर्ण मयूर अपनी चोंचों में मोतियों की माला लिए हुए हैं।

अखेविलास महलः इसमें दो कमरों में राजपूताना के 22 रियासतों की टिकटों के संग्रह को प्रदर्शित किया गया है।

सर्वोत्तम विलासः इस महल का निर्माण महारावल अखैसिंह (1722–1761 ई.) गया। इसमें नीली चौकियों एवं कांच का जड़ाऊ काम किया गया है। इसे शीश महल भी कहा जाता है। इस महल के झरोखे की जाली जैसलमेर की सर्वश्रेष्ठ जाली है।[8] इसमें सामयिक कक्ष के रूप में पलंग, फर्नीचर आदि के साथ महारावल शालिवाहन द्वितीय के आत्मसुख नामक अंगरखे को प्रदर्शित किया गया है।

रंग महलः इसमें जैसलमेर की कलात्मक भित्ति चित्रकारी को प्रदर्शित किया गया है। इन चित्रों में दशहरा की सवारी में महिलाओं एवं पुरुषों के तीखे नाक–नक्श, महिलाओं का ढका हुआ भाल, पुरुषों की पगड़ी तथा नोकदार साफे ध्यान आकर्षित करते हैं। राज महिषियों की श्रृंगार युद्धाओं के साथ शिकार के दृश्य भी दर्शनीय है।

रनिवासः यह गजविलास के पास बना है। इसमें जाली झरोखे इस प्रकार बने हुए हैं कि रानियां महलों के भीतर से बाहर का दृश्य देख सकती थी किन्तु बाहर खड़े व्यक्ति को भीतर का दृश्य नहीं दिखाई देता था।

कंवरपदाः राजकुमारों के रहने के लिए बनाए गए महल कंवरपदा कहलाते हैं।[9]

दीवाने–आमः इसके चौक से राजा का राजतिलक जैसलमेर रियासत की परंपरानुसार किए जाने के पश्चात् राजा को आम जनता नजर न्यौछावर करती थी।

विरासत केन्द्रः इसे रानी महल में बनाया गया है। इसके प्रथम पक्ष को इन्ट्रोडक्टरी गैलेरी कहते हैं। इसमें इन्टैक नामक संस्था द्वारा सम्पूर्ण महल में प्रदर्शित सभी कक्षों के बारे में विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की गई है। दूसरे कक्ष को हेत विलास महल कहते हैं। इसमें रानियों के रहन–सहन, खान–पान, साज–सज्जा तथ जीवन शैली को दर्शाने वाली वस्तुओं को प्रदर्शित किया गया है।

सतियों के पगोथियेः राज प्रासादों के ऊपर जाने वाले मार्ग पर बने पगोथिये को सतियों के पगोथिये कहा जाता है।

राजाओं के अंतिम संस्कार के समय जब रानियाँ सती होने के लिए जाती थी तो इसी मार्ग से जाती थी। सती नारियां लाल कुंकुम या गुलाल से हाथ लालकर दीवार पर चिपका देती थी। बाद में कारीगर उसकी खुदाई कर लेता था। दुर्ग परिसर में कुछ मंदिर भी बने हुए हैं–

लक्ष्मीनाथ मंदिर :

यह मंदिर महारावल लक्ष्मण (1396–1436 ई.) के शासनकाल में बनवाया गया। यह मंदिर जैसलू कुएं के पास बना हुआ है। मंदिर एक ऊँचे चबूतरे पर बनाया गया है। इसके दो मुख्य द्वार है। सभामंडप की चित्रकारी, चांदी की दीवारों तथा सोने के किवाड़ों को देखकर मंदिर की समृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। मंदिर में भगवान लक्ष्मीनाथ मारवाड़ी सेठ के ठाठ में विराजमान है। केसरिया पाग और रक्तवर्णी बागा धारण कर तथा वाम भाग में लक्ष्मी को साथ लेकर भगवान गरूड़ की पीठ पर आसीन है। लक्ष्मीनाथ और लक्ष्मी दोनों ने हीरों तथा पन्नों से जगमगाते आभूषण धारण कर रखे हैं। मंदिर के तोरणद्वारों, सभामंडपों, स्तंभों तथा शिखरों पर प्रतिहारकालीन कालीन कला की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।[10] जैसलमेर के महारावल लक्ष्मीनाथ जी को राज्य का मालिक तथा स्वयं को उनका दीवान मानकर शासन करते थे।[11]

टीकमराय जी का मंदिर :

रावल अमर सिंह (1660–1701) के ज्येष्ठ पुत्र जसवंत सिंह की पत्नी ने दुर्ग में टीकमराम जी देवालय का निर्माण करवाया था। मंदिर में लगे शिलालेख के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा फागुन बदी 12 रविवार संवत 1557 को करायी गयी थी। इसमें यादवों के प्राचीन आदिनारायण देव की मूर्ति स्थापित है। खिलजी तथा तुगलक सैनिकों ने इस मंदिर को तोड़ दिया था किन्तु 1753 ई. महारावल जसवन्त सिंह ने इसका जीर्णोद्वार करवाया।

रत्नेश्वर महादेव मंदिर :

यह लक्ष्मीनाथ मंदिर के सामने ऊँचे चबूतरे पर बना है। इसका निर्माण 1441 ई. में महारावल वैरिसिंह (1436–1446 ई.) ने करवाया। मंदिर में शिव पार्वती की प्रतिमा स्थापित है।

सूर्य मंदिर :

यह मंदिर 1441 ई. में वैरिसिंह ने अपनी दूसरी रानी सूर्यकंवर की स्मृति में बनवाया। इसमें भगवान भुवन भास्कर की लगभग 500 साल पुरानी मूर्ति रथ में स्थापित है।

आईनाथ मंदिर :

जैसलमेर के भाटी शासकों की कुलदेवी आईनाथजी अथवा स्वांगिया कहलाती है। दुर्ग में स्थित राजप्रसाद में स्वांगिया देवी का मंदिर है जिसमें सात शक्तियों की पाषाण प्रतिमाएं स्थापित है। दशहरे पर देवी के आगे बकरे व भैंसे की बलि दी जाती थी ।

जैन मंदिर :

दुर्ग में सात जैन मंदिर बने हुए हैं जो 12वीं से 15वीं शताब्दी के मध्य बनाए गए। पार्श्वनाथ जी, संभवनाथ जी, शीतलनाथ जी, कुन्थुनाथ जी, चन्द्रप्रभु जी, आदिनाथ जी, सीमन्धर स्वामीजी एवं महावीर स्वामी जी के मंदिर बने। इन मंदिरों की स्थापत्य कला दिलवाड़ा के जैन मंदिरों से मिलती जुलती है। मंदिरों के निर्माण में सीमेन्ट व चूना का प्रयोग नहीं हुआ है। स्वर्ण बलुआ पत्थर का प्रयोग किया गया। तीर्थकरों की मूर्तियों का निर्माण बालू रेत में दूध

मिलाकर ऊपर से मोतियों का लेप किया गया।

पार्श्वनाथ मंदिर :

पार्श्वनाथ का मंदिर अपने स्थापत्य, मूर्तिकला व विशालता हेतु प्रसिद्ध है। मंदिर के प्रथम मुख्य द्वार के रूप में पीले पत्थर से निर्मित अलंकृत तोरण बना हुआ है। इस तोरण के दोनों खंभों में देवी–देवताओं, वादक–वदिकाओं के नृत्य करते हुए हाथी, सिंह, घोड़े, पक्षी आदि उकेरे हुए हैं जो सुंदर बेल–बूटों से युक्त है। द्वितीय प्रवेशद्वार पर मुख मण्डप के तीन तोरण व इनमें बनी कलामय छत विभिन्न प्रकार की सुन्दर आकृतियों से अलंकृत है। तोरणों में तीर्थकरों की मूर्तियां सजीव व दर्शनीय है। मंदिर के सभामंडप में पीले पाषाण की 5 X 4½ फीट ऊँचाई वाली चार शिलाएँ हैं। इन शिलाओं पर जैन धर्म से सम्बन्धित कथाएं व चिन्ह आदि उत्कीर्ण है। मंदिर की बाहरी दीवारों पर भी विभिन्न प्रकार की मूर्तियों का रूपांकन हुआ है। ये मूर्तियां कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। मंदिर के ऊँचे शिखर के साथ–साथ अनेक लघु शिखर भी चारों ओर क्रम से फैले हुए हैं।

सम्भवनाथ मंदिर :

इस मंदिर की गुम्बदनुमा छत दिलवाड़ा के मंदिर के अनुरूप है। इसके मध्य भाग में झूलता हुआ कमल है, जिसके चारों और गोलाकार आकार में बारह अप्सराओं की कला कृतियों हैं। अप्सराओं के नीचे के हिस्से में गंधर्व की मूर्तियां उत्कीर्ण है। अप्सराओं के मध्य में पद्मासन मुद्राओं में जिन प्रतिमाएं प्रतिष्ठित है जिनके नीचे हंस बने हैं।

शांतिनाथ जी एवं कुन्थुनाथ जी मंदिर :

यह मंदिर शिखर युक्त है। शिखर के भीतरी गुम्बद में वाद्ययंत्रों को बजाती हुई व नृत्य करती हुई 12 अप्सराओं को उत्कीर्ण किया गया है। इनके नीचे गंधर्वों की प्रतिमाएं हैं। मंदिर के सभा मंडप के चारों स्तम्भों के मध्य सुंदर तोरण बने हैं। यह मंदिर दो मंजिला है। ऊपर के भाग में शांतिनाथजी का मंदिर है जिसमे 17वें तीर्थकर कुंथुनाथजी की मूर्ति मूलनायक के रूप में स्थापित है।

चन्द्रप्रभु मंदिर :

यह मंदिर तीन मंजिला है। इसके सभामंडप के आठ खंभों में आठ कलापूर्ण तोरण बने हैं। तीसरी मंजिल पर भगवान चन्द्रप्रभु विराजमान है एवं चौमुख रूप में हैं। नीचे के सभामंडप में चारों तरफ जाली का काम हुआ है।

ऋषभदेव मंदिर :

इस मंदिर का शिखर अत्यन्त कलात्मक है। मुख्य सभी मंडप के स्तंभों पर हिन्दू देवी देवताओं का रूपांकन हुआ है। गणेश, शिव, पार्वती व सरस्वती की मूर्तियां अंकित की गई है।

जिन भद्र सूरि ज्ञान भंडार :

यह संभवनाथ मंदिर के नीचे बना है और विश्व का सबसे बड़ा भूमिगत संग्रहालय है। इसमें दुर्लभ और प्राचीन पांडुलिपियों का अमूल्य संग्रह है। इसमें 1126 ताड़पत्र पर लिखी हुई पांडुलिपियों तथा 2557 कागज की पांडुलिपियां सुरक्षित है। सबसे लंबी और सुरक्षित ताड़पत्र की पांडुलिपि साढ़े 32 ईंच लंबी है।[12] ताड़पत्रों पर जैन तीर्थकरों से सम्बन्धित चित्रों को अंकित किया गया है। तत्कालीन जनजीवन की झलक भी इन चित्रों में देखी जा सकती है। इस ज्ञान भंडार में नीलम, स्फटिक, पन्ना सोना तथा चांदी के तीर्थकरों की मूर्तियां दर्शनीय है।

जैसलू कुआ :

दुर्ग में स्थित जैसलू कुएं के निर्माण के बारे में मान्यता है कि श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से इसका निर्माण किया। कहा जाता है कि एक बार श्रीकृष्ण अपने सखा अर्जुन के साथ घूमते हुए आए। उन्होंने अर्जुन से कहा कि आगे चलकर मेरे वंशज यहां राज करेंगे। उनके लिए श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से कुए का निर्माण किया। जैसलमेर दुर्ग गौरवशाली इतिहास का साक्षी रहा है। इस दुर्ग ने हिन्दू वीरों के ढाई साके[13] देखें।

पहला साका :

रावल जैतसिंह द्वितीय के शासनकाल में उसका पुत्र मूलराज तथा रतनसिंह, अलाउद्दीन खिलजी का खजाना लूटकर जैसलमेर ले आए। जब अलाउद्दीन खिलजी ने मण्डोर पर आक्रमण किया तब मण्डोर का राजा जैतसिंह की शरण में जैसलमेर चला गया। इससे क्रोधित होकर अलाउद्दीन खिलजी ने जैसलमेर पर आक्रमण किया। उसकी सेना ने 12 वर्ष तक दुर्ग पर घेरा डाले रखा परन्ततु उसे विजय नहीं मिली। आठ वर्ष तक दुर्ग में रहकर युद्ध संचालित करते हुए जैतसिंह की 1313 ई. में मृत्यु हो गई।[14]

जैतसिंह के बाद मूलराज ने चार वर्ष तक युद्ध का संचालन किया। अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़, सिवाना एवं जालौर में विजय प्राप्त करने के बाद पूरी ताकत जैसलमेर के विरूद्ध लगा दी। दुर्ग में रसद समाप्त होने के बाद मूलराज ने साका करने का निश्चय किया। यह जैसलमेर दुर्ग का पहला और भाटियों का चौथा साका था।[15] खिलजी सेना के जाने के बाद दूदा (दुर्जनशाल) और तिलोकसी (त्रिलोक सिंह) ने जैसलमेर दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

दूसरा साका :

दूदा के शासन काल (1391–1331 ई.) में बारह वर्ष तक मुस्लिम सेना का घेरा चलने के बाद दूदा और तिलोकसी ने साका करने का निश्चय किया। रनिवास की समस्त स्त्रियों ने जौहर का आयोजन किया। दूदा और तिलोकसी लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।[16]

आधा साका :

कंधार के अधिपति अली खां राजनीतिक संकटों के कारण रावल लूणकर्ण के राज्य में शरण लेने को बाध्य हुआ। अमीर अली ने जैसलमेर पर आधिपत्य हेतु षड़यंत्र रचा। उसने महारावल की आज्ञा प्राप्त कर बेगमों की डोलियाँ दुर्ग में भिजवाई। परन्तु उनमें बेगमों के स्थान पर हथियार बंद योद्धाओं को बैठा दिया। बेगमों के स्थान पर मुस्लिम सैनिकों को देखकर युद्ध आरंभ हो गया। महारावल के आदेश से राजमहल के द्वार बंद कर साके की घोषणा की गई। जौहर के लिए अग्नि जलाने का समय नहीं था। अतः रनिवास की समस्त कुल वधूओं और हिन्दू वीरांगनाओं ने अपने सिर आगे कर दिए। महारावल ने अपनी तलवार से उनके सिर विच्छेद कर दिए। महारावल भी अपने अंगरक्षकों एवं सैनिकों सहित युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ।[17] यह घटना आधे साके[18] के नाम से जानी जाती है। सन् 1570 में जब अकबर अजमेर होता हुआ नागौर पहुंचा तब तत्कालीन शासक हरराज आमेर के कछवाहा भगवान दास के माध्यम से अकबर से मिला। उसने शाही सेवा में रहना स्वीकार किया एवं अपनी पुत्री का विवाह भी अकबर के साथ किया।[19] मुगल अधीनता में जैसलमेर लंबे समय तक बाह्य आक्रमण से सुरक्षित रहा। महारावल अमर सिंह (1660–1701 ई) के समय राज्य की स्वतंत्र मुद्रा एवं महारावल अखैसिंह (1722–1761 ई) के समय स्वतंत्र टकसाल की स्थापना की गई। स्पष्ट है कि इस समय तक जैसलमेर के शासक स्वतंत्र सत्ता का उपभोग करने लगे थे।

इस प्रकार गौरवशाली इतिहास की स्मृति संजोए हुए यह दुर्ग वर्तमान समय में राजस्थान के सबसे बड़े रहवासीय

दुर्ग के रूप में जाना जाता है। यहां 5000 के लगभग जनता निवास कर रही है। कुछ लोगों ने अपने पुराने पांरपरिक घरों को थोड़े फेरबदल के साथ गेस्टहाउस में बदल लिया है। यहां रहकर पर्यटक किले के भव्य सौन्दर्य को करीब से जान सकता है। परन्तु पीले पत्थरों के बेजोड़ तालमेल से देशी–विदेशी सैलानियों को सम्मोहित करने वाली यह विरासत संकट में हैं। बिजली के उलझे तारों के कारण पर्यटकों को यहां की कलात्मक सुंदरता को कैमरे में कैद करने मे दिक्कतें आती है, वहीं कलात्मक भवनों की सुंदरता भी प्रभावित हुई है। वर्ष 2009 में आए भूकम्प के बाद किले की मजबूती कम होने एवं घरों के जर्जर होने के बावजूद एहतियातन कदम नहीं उठाए गए हैं। अतः वर्तमान समय में मरूभूमि की इस अनूठी विरासत का संरक्षण करना आवश्यक है।

***सह आचार्य**
इतिहास विभाग
राजकीय डूंगर महाविद्यालय,
बीकानेर (राज.)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. गोपीनाथ शर्मा – राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2007, पृ. 143
2. कौटिलीयः अर्थशास्त्रम्, (पाण्डेय रामतेज शास्त्री), आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान दिल्ली, 2017, 2/3, पृ. 76
3. मुँहणोत वैणसी की ख्यात (भाग–2) (अनु. – रामनारायण दूगड़) – राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2010, पृ. 191–192; श्यामलदास–वीर विनोद– भाग 4, पृ. 1757; बांकीदास री ख्यात – राजस्थान पुरात्वान्वेषण मंदिर, जयपुर, 1956, पृ. 110
4. माहेश्वरी 'जेसल'–जैसमेर राज्य का मध्यकालीन इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1997, पृ. 146
5. भाटी, रघुवीर सिंह– विश्व प्रसिद्ध पर्यटन स्थल जैसलमेर, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, 2005, पृ. 45
6. मनोहर राघवेन्द्र सिंह – राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 37
7. 'मेघाडम्बर' एक विशाल छतरी है जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने अपने वंशजों को दिया था तभी से ये लोग छत्रधारण करते आ रहे हैं। इसका प्रतीक चिन्ह अष्टधातु से बना है।
8. शर्मा नन्द किशोर – त्रिकूटगढ़, जैसलमेर, सीमान्त प्रकाशन, जैसलमेर, 2005, पृ. 31
9. शर्मा नंद किशोर – त्रिकूटगढ़, जैसलमेर, सीमान्त प्रकाशन, जैसलमेर, 2005, पृ. 31
10. गुप्ता, मोहनलाल – राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्ग, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2017, पृ. 222
11. लखमीचन्द– तवारीख जैसलमेर, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1997, पृ. 46
12. मिश्र रतनलाल–राजस्थान के दुर्ग, साहित्य संस्थान, उदयपुर, 1981, पृ. 87
13. साका राजस्थान की एक प्रसिद्ध प्रथा है। जिसमें महिलाओं को जौहर की ज्वाला में कूदने का निश्चय करते देख पुरुष केसरिया वस्त्र धारण कर मरने मारने के निश्चय के साथ दुश्मन सेना पर टूट पड़ते थे ।

14. मुँहणोत नैणसी की ख्यात–द्वितीय– रामनारायण दुगड़ – सं. 1991, पृ. 202; वीर विनोद भाग 4, पृ. 1759; डॉ. हरिवल्लभ माहेश्वरी 'जेसल– जैसलमेर राज्य का मध्यकालीन इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1997, पृ. 33

15. कर्नलजैम्स टॉड – राजस्थान का इतिहास– भाग–2, (अनु केशव ठाकुर) साहित्यगार, जयपुर– 2012, पृ.31

16. मुँहणोत नैणसी की ख्यात–द्वितीय– रामनारायण दुगड़ – सं. 1991, पृ. 208; वीर विनोद भाग 4, पृ. 1760; डॉ. हरिवल्लभ माहेश्वरी 'जेसल– जैसलमेर राज्य का मध्यकालीन इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1997, पृ. 36–37

17. लखमीचन्द– तवारीख जैसलमेर, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1997, पृ. 52

18. ऐसा साका जिसमें वीरों के द्वारा केसरिया वस्त्र पहने जाए किन्तु जौहर न हो सके। ऐसा साका 'अर्द्ध साका' कहा जाता था।

19. बैबरीज एच. – दि अकबरनामा खंड–2, रेयर बुक्स, दिल्ली, पृ. 518–519